

शांकर वेदान्त और रामानुज वेदान्त में माया के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन

Swati Sharma
Research Scholar (Ph.D)
Dayalbagh Educational Institute, Agra

शांकर वेदान्त

विख्यात इतिहासकार मैथ्यू आर्नल्ड ने अद्वैत वेदान्त को भारत का प्रतिनिधि दर्शन घोषित किया है। उनके अनुसार अद्वैत वेदान्त के बाद का समस्त दर्शन उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बन पा है। यहाँ तक कि आधुनिक भारत में नव्य वेदान्त की जो परम्परा दिखाई देती है उस पर आचार्य शंकर का ही प्रभाव है। निःसंशय ही विद्वानों के मानचित्र पर अद्वैत वेदान्त का जो चित्र उभरा है उसके कारण अन्य भारतीय दर्शनों की छवि पर छाए धुंधलके को दूर करने के लिए आज भी कठोर अध्ययन की आवश्यकता है।

लगभग सातवीं शती के आचार्य शंकर की प्रतिद्वन्द्विता में 12वीं शती के आचार्य रामानुज दिखाई देते हैं। ये दोनों दाक्षिणात्य आचार्य अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर एकमत हैं – वेद, उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र, स्मृति और पुराणों का प्रमाणतः स्वीकार करने में, सांख्य के प्रकृतिवाद, वैशेषिक के परमाणुवाद, बौद्धों के विज्ञानवाद, जैनों के स्याद्वाद तथा न्याय के असत्कार्यवाद का खण्डन करने में दोनों एकमत हैं। कर्म के सिद्धान्त के प्रति दोनों दृढ़ आस्था व्यक्त करते हैं और मोक्ष की अविचल स्थिति को स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है कि इतनी समानताओं के बाद भी उनमें मूलभूत अन्तर क्या है ?

आचार्य शंकर की मूलभूत विशेषता जो उन्हें आचार्य रामानुज से अलग करती है और विषयनिष्ठवाद का विरोधी सिद्ध करती है वह है, जगत् की उत्पत्ति का सिद्धान्त। शंकर ने जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल कारण 'ब्रह्म' और उसकी शक्ति 'माया' को माना है।

शंकर ने जहाँ माया को एक ओर ब्रह्म की 'शक्ति' कहा तो दूसरी ओर "अज्ञान" रूपभी। वे उसे सत्-असत् दोनों से परे, अनिर्वचनीय भी कहते हैं। माया की अपेक्षा से ईश्वर जगत् का कर्ता और उससे संबंधित न होने के कारण ब्रह्म है।

दार्शनिक चिन्त मूलतः जिज्ञासा से निःस्तृत होता है। वस्तुनिष्ठ रूप से इस प्रसंग में अधिक कुछ कहना प्रायः कठिन होता है। किन्तु एक दार्शनिक के लिए जीवन और जगत् की व्यावहारिकता से निःसंग रहना उसके

हित में कथापि श्रेयस्कर नहीं हो सकता। अस्तु, दार्शनिक अपने सम-सामयिक परिवेश में जो कुछ अनुभव करता है, तथा जिस बोध को विकसित करता है, वह देश और काल के बंधनों से मुक्त होता है।

‘माया’ संस्कृत शब्द है। ‘माया’ का संस्कृत के अलावा दूसरी भाषा में उल्लेख नहीं मिलता। माया शब्द के कई अर्थ निकाले गये हैं।

माया शब्द “मा” धातु से बना है। मीयते या सा माया, जो नापा जाता है वह माया है अथवा मीयते अन्यासा माया अर्थात् जिसे नापा जाता है वह माया है। माया का अर्थ है मापने की शक्ति या इस शक्ति से मापने योग्य या निश्चित की जाने वाली वस्तु हो सकता है।

बेटी हीमान ने कहा है कि “मापने या विभाजित करने की इस शक्ति के द्वारा ही कृष्ण सभी इन्द्रियानुभविक या व्यावहारिक रूप धारण करते हैं और सभी माया अर्थात् मापने योग्य समीम वस्तुएँ अव्यक्त से हीन प्रकार की है।” माया एक मानदण्ड है, एक माप है।

माया की व्युत्पत्ति ‘मा’ और ‘या’ इन दो शब्दों के योग से हुई है। “मा” का अर्थ ‘नहीं’ या ‘न’ है। ‘या’ का अर्थ ‘जो कुछ’ अर्थात् माया का अर्थ “जो कुछ न हो” होता है। जैसे हम कहें कि पानी है किन्तु पानी न हो और उसके स्थान पर रेत हो ऐसी दशा को हम माया कहते हैं।

माया शब्द का अर्थ प्रायः जादू, छल, कपट, इन्द्रजाल, मिथ्या धारणा, धोखा, जालसाजी, धूर्तता, दाँव युक्ति, चाल आदि के लिए किया जाता है। लौकिक संस्कृत वेदान्त तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रचलित इसके विविध प्रयोग ही इन अर्थों के आधार हैं। सायण ने प्रसंगानुकूल माया के दो अर्थ किए हैं। देवों से संबद्ध होने के कारण इसका अर्थ अच्छा अर्थात् शक्ति या प्रज्ञा है और दुःसत्त्वों, असुरों आदि से संबद्ध होने पर इसका अर्थ बुरा अर्थात् कपट या दुष्प्रज्ञा है।

संहिताओं में माया का वर्णन इन्द्र की अनेक रूप धारण करने वाली शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन्द्र अनेक रूपों को धारण करके अनेक एवं अलग-अलग रूपों में प्रकट होते हैं। इन्द्र माया द्वारा अनेक रूप धारण करके यजमानों के पास उपस्थित होते हैं, क्योंकि इन्द्र के रथ में हजार घोड़े जोते गये हैं।¹

ऋग्वेद संहिता में ‘माया’ शब्द का प्रयोग इन्द्रादि देवताओं की शक्ति और प्रज्ञा के अर्थ में ही अधिक हुआ है।

अथर्ववेद में 'माया' का प्रयोग रहस्यमय शक्ति के रूप में हुआ है। जिसका देवताओं के साथ शुभ अर्थ में प्रयोग है और जो दानवों के साथ अशुभ शक्ति का द्योतक है। इसका उल्लेख रहस्यमयी, जादू, चालाकी दुर्बुद्धि आदि के अर्थ में हुआ है। असुरों ने एक मंत्र में विराट 'गौ' को माया कहा है और उससे माया रूपी दूध दूहा है।

शंकराचार्य के मायावाद के सिद्धान्त की उत्पत्ति के संबंध में मतभेद हैं। शंकराचार्य के मायावाद का उदय स्वतंत्र रूप से शंकराचार्य की प्रतिभा का फल माना जाता है। उनका मायावाद उपनिषद्वर्ती सिद्धान्त का ही विश्लेषण है।

प्राचीन उपनिषदों में "माया" शब्दका प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। तथापि उसका अन्तर्निहित भाव उसमें सदैव विद्यमान रहा है। प्रश्नोपनिषद् में 'माया' पद का प्रयोग नैतिक प्रसंग में किया गया है।² वहाँ इसका अर्थ न ईश्वर की रहस्यमयी सृजनशक्ति है और न हमारी अविद्या किन्तु आचार की कुटिलता अथवा मिथ्याचार रूप छलना है।

रेगनाट के अभिमत में "यह पूर्णतया विदित है कि प्रमुख उपनिषदों में श्वेतायुतर और मैत्रायणी को छोड़कर कहीं भी माया शब्द का प्रयोग दिखाई नहीं देता है।"

बृहदारण्यकोपनिषद् में केवल एक बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है, यह अंश भी ऋग्वेद से लिया है, जहाँ माया का अर्थ सृष्टि कर्त्री शक्ति है।³ मेक्स म्युलर और थीवो माया के सिद्धान्त को उत्तर काल की देन मानते हैं।⁴ गफ ने कहा है कि, "मायावाद का सिद्धान्त उपनिषदों का मूल सिद्धान्त है।"⁵ आर.डी. रानडे का विचार है कि माया शब्द का प्रयोग उपनिषदों में बहुत बार नहीं हुआ है फिर भी माया शब्द का अन्तर्गत भाव उसमें वर्तमान है।⁶

श्वेतायुतर उपनिषद् में माया का वर्णन प्रकृति के अर्थ में भी हुआ है। इस उपनिषद् में माया को प्रकृति और महेश्वर को मायावी कहा गया है।

भगवत् गीता में माया शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है, श्रीकृष्ण कहते हैं कि, "मैं अविनाशी और अजन्मा होने पर भी तथा समस्त भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ।"⁷ इसका तात्पर्य यह है कि अधिष्ठान में जब उसके विपरीत लक्षण दिखाई देते हैं तो वह माया के कारण हैं। अजन्मा का जन्म माया से होता है। दूसरे स्थान पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि, "यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष मुझे ही निरंतर भजते हैं वे इस माया का उलंघन कर जाते

हैं।⁸ माया शब्द ईश्वर की रहस्यमयी इस शक्ति के सांसारिक काय और जीवों की अविद्या के लिए प्रयुक्त हुआ है। किन्तु साथ ही संसार या संसार में विद्यमान वस्तुओं के मिथ्या होने का भाव कहीं भी उपलब्ध नहीं होता।

‘माया’ का प्रयोग बौद्ध दर्शन में पाली लिपि के प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में प्रबंधना, छल, धोखा, कपट, धोखेबाजी, या कपटपूर्ण व्यवहार के अर्थ में हुआ है।⁹ लंकावतार सूत्र में इसका प्रयोग अध्यास के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

ब्रह्मसूत्र में माया का प्रयोग शक्ति नहीं अपितु असद् वस्तु के अर्थ में किया गया है अर्थात् माया का प्रयोग एक ही बार किया गया है।¹⁰

वेदान्त दर्शन में माया को परमेश्वर की अविद्यात्मिका बीज-शक्ति कहा है: यह शक्ति अव्यक्त शब्द के द्वारा निर्दिष्ट की गयी है। माया परमेश्वर में आश्रित होने वाली महासुषुप्तिरूपिणी है, जिसमें अपने स्वरूपको न जानने वाले संसारी जीव शयन क्रिया करते हैं।¹¹ त्रिगुणात्मिका माया ज्ञान विरोधी भावरूप पदार्थ है। परमेश्वर की इसी अव्यक्त, अनादि, त्रिगुणात्मिका अविद्या स्वरूप माया शक्ति के द्वारा जगत् की उत्पत्ति होती है।¹²

अव्यक्तनाम्नी परमेश्वरशक्ति नराद्य विद्या त्रिगुणात्मिका परा।

कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।

— विवेक चूडामणि 110, पृ. 19

माया के स्वरूप के संबंध में शंकराचार्यका विचार है कि माया न सत् है, न असत् है। क्योंकि यदि माया को सत् माने तो चिदात्मा के समान इसका बाध कभी नहीं होना चाहिए। परन्तु तत्त्वज्ञान से अज्ञान का नाश होता देखा गया है। अतः अज्ञान सत् नहीं है। अज्ञान बन्ध्यापुत्र और शशविषण की भाँति असत् नहीं है, क्योंकि संसार के मोहपाश में बद्ध प्रत्येक व्यक्ति को “मैं अज्ञ हूँ” इस प्रकार का स्पष्ट भान होता है। अतः अज्ञान असत् भी नहीं है। अज्ञान सदसद् रूप भी नहीं है, क्योंकि सद्वृत्ता और असद्वृत्ता दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। अतः ज्ञान अनिर्वचनीय है।

शंकराचार्य का विचार है कि माया न सत् है, न असत् है और न उभय रूप है, न भिन्न है, न अभिन्न है और न उभय रूप है, न अंग सहित है, न अंग रहित है, न उभयात्मिका ही है, किन्तु अत्यन्त अद्भुत और अनिर्वचनीय रूपा है।¹³ उक्त चिंतन एवं विचार अग्रलिखित श्लोक से स्पष्ट हो जाता है —

सन्नप्य सन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्य भिन्नाप्युभयात्मिका नो

संगाप्यनंगाप्युभयात्मिका नो महाअद्भुतानिर्वचनीय ।।

– विवेक चूडामणि (श्लोक, पृ. 26)

विद्यारण्यक स्वामी का विचार है कि स्पष्ट रूप से भासित होने पर भी जिसका निरूपण न किया जा सके वही माया है।¹⁴ सत्-असत् से विलक्षण होने पर भी माया अभाव रूप नहीं है। वह ज्ञान का अज्ञान भी नहीं है। वह भावरूप है, क्योंकि उससे जगत् रूपी महाप्रपंच की उत्पत्ति होती है। माया ज्ञान विरोधी तमोरूप व भावरूप है। ज्ञान के द्वारा निर्वर्त्य होना ही माया का लक्षण है। यदि माया भावरूपन होती तो इसकी निवृत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। माया को भावरूप कहने का अभिप्राय यह है कि उसे अभाव से विलक्षण बताना। जब तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता तभी तक अज्ञान तमोरूप व भावरूप है। साक्षात्कार होने पर अज्ञान नष्ट हो जाता है। माया लौकिक दृष्टि से सत् प्रतीत होती है। युक्तिपूर्वक विवेचन करने से अनिर्वचनीय जान पड़ती है। और आत्मज्ञान होने पर तुच्छ हो जाती है। वस्तुतः इसका निरूपण असम्भव होता है।

मायावाद के लिए गौडपाद ने जो तर्क दिया है वह 'अजातवाद' कहा जाता है। उनका कहना है कि सत् से तत्त्वतः कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि सत् से यदि कुछ उत्पन्न होगा तो वह सत् भी किसी कारण से उत्पन्न होगा और फिर वह कारण भी किसी अन्य से उत्पन्न होगा और इसी प्रकार अन्य-अन्य की अपेक्षा अनन्त तक जायेगी। अतः सत् से किसी तत्त्व की उत्पत्ति मानने में अनवस्था-दोष आएगा। अतः सत् से तात्त्विक उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इससे स्पष्ट है कि सत् से जो उत्पत्ति होती है वह केवल माया से है, अर्थात् वह केवल देखने में हैं।¹⁵ इस देखने का युक्तिसंगत अर्थ कुछ नहीं किया जा सकता है।

गौडपादाचार्य के मायावाद का शंकराचार्य पर अधिक प्रभाव पड़ा है। शंकराचार्य को मायावाद के सिद्धान्त के समर्थन के लिए गौडपादाचार्य की माण्डूक्य करिकाओं से एक सबल पृष्ठभूमि प्राप्त हुई थी। शंकराचार्य ने उपनिषदों एवं गौडपाद के सिद्धान्तों के आधार पर ही अपने मायावाद के सिद्धान्त का विकास किया था। माण्डूक्य कारिका पर शंकराचार्य ने एक भाष्य की रचना की थी। इस भाष्य के अन्तर्गत गौडपादाचार्य के मायावाद से शंकराचार्य प्रभावित हुए थे। गौडपादाचार्य के कतिपय स्थलों को शंकराचार्य ने ज्यों का त्यों अपना लिया था।

रामानुज वेदान्त

रामानुज दर्शन शंकर के मायावाद की प्रतिक्रिया से उपजा है। रामानुज प्रकृति को ही माया कहते हैं। वह जगत् को ब्रह्म से उत्पन्न अद्भुत रचना मानते हैं तथा माया को उसकी अद्भुत कार्य सम्पादिका अनन्य एवं यथार्थ शक्ति, न कि आवरण शक्ति। रामानुज ने शंकर के माया संबंधी विचार को न स्वीकार करके चिदचिद् सगुण ब्रह्म की कल्पना की है और मायिक जगत् को शंकर की भाँति मिथ्या न मानकर सत्य स्वीकार किया है। रामानुज दर्शन में मायावी ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म दो अलग तत्त्व न होकर सगुण ब्रह्म ही एक मुख्य तत्त्व है।

शंकर के अनुसार माया शब्द का अर्थ मायावी परमेश्वर की शक्ति है। माया शक्ति सत् एवं असत् के विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय एवं मिथ्या है। इसके विपरीत रामानुज ने माया को परमात्मा की विचित्र शक्ति का रूप दिया है। रामानुज माया को आश्चर्यचाची मानते हैं जिस प्रकार स्वप्न में रथादि का पूर्णतया अभाव होने पर भी रथादि की आश्चर्यजनक सृष्टि देखने में आती है, उसी प्रकार परमात्मा की यह सृष्टि भी आश्चर्य रूपा है। परमात्मा की यह सृष्टिकर्त्री शक्ति अचिन्त्या है। इसके अतिरिक्त रामानुज ने कहीं-कहीं माया का अर्थ कूटशक्ति किया है।¹⁶

रामानुज ने शंकर का विरोध किया। उनकी आत्मा को शंकर के विचारों से शान्ति नहीं मिली। उनकी समझ में नहीं आया कि माया मानने से शंकर का अद्वैतवाद कैसे सिद्ध हो जाता है। शंकर कहते हैं कि केवल ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म को छोड़कर और बहुत सी चीजें जो प्रतीत होती हैं, वे माया के कारण हैं। रामानुज विचार करना चाहते हैं कि यह माया क्या वस्तु है जिसके कारण बिना अस्तित्व रखते हुए भी यह जगत् प्रतीत हाता है। शंकर माया को न ब्रह्म के समान सत् मानते हैं न खरगोश के सींग के समान असत्। जब सत् भी नहीं और असत् भी नहीं है तो क्या ? यदि माया कुछ वस्तु है तो शंकर का अद्वैतवाद नहीं रहा। क्योंकि दो वस्तुएँ हो गईं— एक ब्रह्म और दूसरी माया। यदि कहो कि असत् है अर्थात् कुछ वस्तु नहीं हो तो वह बहुत का भ्रम कैसे उत्पन्न कर देती है ? यदि कहो कि न सत् है और न असत् तो ऐसा कोई उदाहरण ही नहीं मिलता। या तो कोई चीज है या नहीं है। यह कैसे हो सकता है कि 'हो भी नहीं' और 'न हो भी नहीं'। खरगोश के सींग नहीं होते इसीलिए खरगोश के सींग को असत् की कोटी में रखते हैं। बैल के सींग होते हैं इसीलिए इसको असत् को कोटी में न रखकर सत् की काटि में रखेंगे, जिसका 'अस्तित्व' नहीं आस नास्तित्व होगा जिसका नास्तित्व नहीं उसका अस्तित्व अवश्य होगा।

रामानुज ने 'माया' के विरुद्ध बहुत युक्ति-युक्त दोषों का उल्लेख किया है, और यदि 'माया' की कल्पना नहीं की जाती तो शंकर का मत ठहरता ही नहीं है। वहाँ हम उन सात दोषों को संक्षेप में दिखलाते हैं, यथा –

आश्रयानुपपत्ति दोष

माया किस के आश्रय ठहरेगी ? माया का कोई स्वयंसिद्ध और स्वयमाश्रित वस्तु नहीं जो अपने पैरों खड़ी हो सके। स्वप्न सदा स्वप्न देखने वाले के आश्रित होता है। यदि स्वप्न देने वाला कोई नहीं तो स्वप्न भी कोई नहीं। मैं स्वप्न में देखता हूँ कि हाथी पर चढा हूँ। यह हाथी पर चढने का स्वप्न किसके आश्रित हुआ ? मेरे, क्योंकि मैंने स्वप्न देखा और मैंने स्वप्न क्यों देखा ? इसीलिए कि मेरे मस्तिष्क में विकार है, मुझे नींद नहीं आई और जागृत अवस्था के पडे हुए संस्कार घारे निद्रा के अभाव में मेरे मन के आगे नृत्य करने लगे। यदि मैं न होता तो स्वप्न भी न होता, इसीलिए स्वप्न के आश्रय के लिए एक ऐसी सत्ता चाहिए जो अल्प, अपूर्ण और विकार प्रभावित हो। शंकर कहते हैं कि ब्रह्म पूर्ण है, अनन्त है, ज्ञान है। इसीलिए ब्रह्म तो 'माया' का आश्रय हो ही नहीं सकता। रहा 'जीव', शंकर जीव की अलग सत्ता नहीं मानते। उनके मत में तो माया से प्रभावित ब्रह्म ही जीव हो जाता है। और पूर्ण ज्ञानी होते ही जीव अपने को ब्रह्म समझने लगता है। इसीलिए जब 'माया' से पहले जीव कोई चीज ही न था तो वह माया को आश्रय कैसे दे सकता है। इसीलिए रामानुज कहते हैं कि शंकर के मत में पहला दोष "आश्रयानुपपत्ति दोष" अर्थात् मायावाद की कल्पना करने से पूर्व शंकर ने यह नहीं सोचा कि 'माया' को मानने ने उसके आश्रय को कहाँ से मानेंगे और जब तक आश्रय न माने उस समय तक माया की कल्पना ही कैसे कर सकेंगे।

विरोधानुपपत्ति दोष

'माया' ब्रह्म को छिपा कैसे सकती है ? यदि ब्रह्म ही ब्रह्म है और ब्रह्म 'ज्ञान' है तो इस ज्ञान का तिरोधान कैसे हुआ ? जब तक प्रकाश न छिपे अंधेरा कैसे हो ? दीपक जल रहा है। समस्त स्थान में प्रकाश हो रहा है या तो दीपक के ऊपर टोकरी रख दो या दीपक के सामने कोई दीवार खड़ी कर दो, तो प्रकाश रुक जायेगा और अंधेरा हो जायेगा। अंधेरे में साँप को रस्सी समझ सकते हैं और रस्सी को साँप। परन्तु यदि प्रकाश ही प्रकाश है, तो प्रकाश से इतर कोई वस्तु हीनहीं, न दीवार न टोकरी, तो अंधेरा कैसे होगा ? दीपक के तले अंधेरा तभी होता है जब दीपक का प्रकाश शून्य जला दीपक की 'लौ' को रोक लेता है और दीपक के ऊपर अंधेरा तभी होता है जब बिजली के बल्ब के ऊपर एक प्रकाश-शून्य खोल चढाते हैं। जब तक ब्रह्म के ज्ञान का तिरोधान नहीं होता, स्वप्न,

अज्ञान, अविद्या, भ्रम या माया का प्रश्न ही नहीं उठता और ब्रह्म का तिरोधान हो कैसे ? या तो ब्रह्म को कोई ऐसी वस्तु मानो जो ढंक सकती है और माया को ऐसी वस्तु मानो जो ढांक सकती है। यदि ऐसा मानोगे तो ढांकनेवाली और ढंकवाली दो वस्तुएँ हो जायेगी और अद्वैतवाद का किला थम से आ गिरेगा। यदि मैं कोई वस्तु नहीं, किन्तु प्रतीत ही होती है तो वह ब्रह्म के ज्ञान को ढाँकने के लिए कभी पर्याप्त नहीं हो सकती। कल्पित दीवार का कल्पित टोकरी से दीपक के प्रकाश को ढंक नहीं सकते और जब तक प्रकाश ढंकता नहीं, अंधेरा हो ही नहीं सकता। इसीलिए रामानुज कहते हैं कि मायावाद का दूसरा दोष— 'तिरोधानानुपपत्ति' है।

स्वरूपानुपत्ति दोष

शंकर ने 'माया' को मान तो लिया परन्तु वह उसके स्वरूप का निश्चय नहीं कर सके। कोई पूछता है कि शंकराचार्य क्या माया सत् है ? कहते हैं 'नहीं'। क्या असत् है ? कहते हैं, 'नहीं'। केवल 'नहीं' से तो काम नहीं चलता। यदि कहो कि 'नानात्व अर्थात् संसार में बहुत सी वस्तुएँ हैं। इस भ्रम को उत्पन्न करने वाली चीज माया है तो वह कोई चीज हुई ? फिर अद्वैत कैसा ? इतनी बात मानने से भी तो प्रश्न ही उठेगा कि यह माया ब्रह्म में भ्रम कैसे उत्पन्न कर देती है ? 'ज्ञान स्वरूप' ब्रह्म कैसे समझने लगता है कि मैं जीव हूँ, अल्प हूँ, मेरी नाक है, कान है इत्यादि।

अनिर्वचनीयत्वानुपत्ति दोष

शंकर 'माया' को अनिर्वचनीय मानते हैं अर्थात् न वह सत् है न असत्। अर्थात् है भी नहीं और नहीं भिन्नी नहीं। यह कैसे हो सकता है ? ज्ञान या तो सत् का होगा या असत् का। यदि ऐसी चीजों का भी ज्ञान मानोगे जो है भी नहीं और नहीं भी तो ज्ञान की कोई व्यवस्था नहीं रहेगी। अनिर्वचनीयत्व एक निरर्थक शब्द है जिसका यहाँ पर कोई अर्थ नहीं ठहरता।

प्रमाणानुपत्ति दोष

माया के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। जो न सत् है न असत् उसके लिए प्रमाण ही क्या। उसकी तो कल्पना ही अकारण है और ऐसी कल्पना के ऊपर किसी दर्शनशास्त्र की स्थापना करना उड़ते हुए रेत के ऊपर महल बनाना है।

निवर्तकानुपत्ति दोष

यदि यिमान भी लिया कि 'माया' ही बंधन है, माया हीद रोग है जिसकी निवृत्ति करनी है, तो यह रोग निवृत्त कैसे होगा ? इसका निवर्तक क्या चीज है ? ब्रह्म को तो शंकर निर्गुण और निष्क्रिय मानते हैं। वह तो निर्विशेष है। इस प्रकार का ब्रह्म माया को कैसे दूर करेगा ? और जब तक माया दूर न हो मोक्ष कैसा ? विचित्र बात यह है कि बंध और मोक्ष को तो शंकर भी मानते हैं। इससे तो इनको इन्कार ही नहीं।

निवृत्यनुपपत्ति दोष

निवृत्त (बन्ध नाश) की भी तो उपपत्ति नहीं है। बन्ध कल्पित तो है नहीं। बन्ध वास्तविक है। हम सबको उसकी अनुभूति होती है। बन्ध से बचने के लिए ही तो मोक्ष की इच्छा करते हैं माया के मानने से यह भी युक्ति-संगत नहीं ठहरती है। यदि बन्ध वास्तविक नहीं तो मोक्ष ही वास्तविक न होगा।

रामानुज कहते हैं कि 'माया' शब्द तो वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर आया है परन्तु उस अर्थ में नहीं जिसमें शंकर लेते हैं 'मायावाद' तो शंकर की अपनी ही कल्पना है।

जीव और ब्रह्म के विषय में शंकर और रामानुज के मत में यह अन्तर है कि रामानुज के लिए जीव और ब्रह्म दो पृथक् आध्यात्मिक सत्ताएँ हैं, शंकर के लिए एक ही आध्यात्मिक तत्त्व है क्योंकि दो आध्यात्मिक तत्त्व अकल्पनीय है।

रामानुज के लिए जीव अणु और परिच्छिन्न है, वह ईश्वर का अंश है और उसका व्यक्तित्व रूप और परिच्छेद सदा अक्षुण्ण रहेगा। मोक्ष भक्ति और उपासना द्वारा ईश्वर के लोक के प्राप्ति है।

शंकर के लिए जीव वास्तव में विभु है। ब्रह्म ईश्वर से भिन्न है, उसके साथ भक्ति और उपासना का संबंध संभव नहीं है। वह एक अनन्त आध्यात्मिक तत्त्व है जो हमारी आत्मा है। परिच्छिन्नता हमारी भौतिक सत्ता का एक प्रकार है, हमारी वास्तविक सत्ता का तत्त्व नहीं। मोक्ष इस अनन्त आत्मस्वरूप का साक्षात्कार है, जिसमें हमारे व्यक्तित्व का विनाश नहीं वरन् एक अनन्त आत्मा के रूप में उसका विकास होता है।¹⁷ शंकर वेदान्त में जीव को ज्ञाता कहा गया है जबकि रामानुज वेदान्त में जीव को ज्ञः कहा गया है।

शंकर और रामानुज का कार्यकारण सिद्धांत भी एक दूसरे के विरुद्ध है। शंकर के अनुसार मायाशक्तिसम्पन्न ब्रह्म जगत् का उपादान कारण एवं निर्मित कारण दोनों है। माया के कारण ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है एवं चैतन्य रूप होने के कारण निमित्त कारण है।

रामानुज के अनुसार सृष्टि एवं प्रलय ब्रह्म की ही नो स्थितियों के नाम हैं। लयावस्था में जो ब्रह्म कारणरूप से स्थित रहता है वही सृष्टि काल में कार्य अवस्था में देखा जाता है। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय ब्रह्म की ही दो स्थितियाँ हैं। रामानुज सत्कार्यवाद और शंकर विवर्तवाद के समर्थक हैं।

शंकर के अनुसार जगत् की सत्ता मायिक होने के कारण ब्रह्म का कार्य है और न परिणाम, ब्रह्म का विवर्त है। विवर्तवाद के अनुसार जगत् ब्रह्म का कार्य न होकर मायिक एवं प्रतीतिमात्र का फल है। कार्य—कारण—संबंधी उक्त विचार के कारण ही शंकर और रामानुज के ख्याति संबंधी विचार में भी अंतर है।

रामानुज सत् ख्यातिवादी है और शंकर अनिर्वर्तनीय ख्यातिवादी है। सत् ख्यातिवादी रामानुज के अनुसार युक्ति आदि में रजतादि की ख्याति असत्ख्यातिवादी बौद्धों की तरह असत् अथवा शंकर वेदान्त की तरह अनिर्वर्तनीय न होकर सत् है। इसके विपरीत शंकर वेदान्त के अन्तर्गत युक्ति आदि में रजतादि की ख्याति को सत् एवं असत् से विलक्षण होने के कारण अनिर्वर्तनीय कहा है।

उपरोक्त कथनों से शंकर व रामानुज का तुलनात्मक अध्ययन स्पष्ट हो जाता है।

सन्दर्भ

- 1 रूपं रूपं प्रतिरूपो भवूव तदस्य रूपं प्रति वक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पूरुरूप ईयते युक्ता हास्य हस्यः शतादश। ऋग्वेद, 6.47.19
- 2 न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति, प्रश्नोपनिषद् 1.16.
- 3 रेगनंद, ला माया, रिव्यू डे आइ हिस्टोरी हेज रिलीजियस टूमी., XII नं. 3,1885, सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट 290534
- 4 एफ. मेक्सम्युलर थ्री लैक्चर्स ऑन वेदान्त फिलासफी, पृ. 128
- 5 ए.इ.गफ, फिलासफी ऑफ द उपनिषद्स, नई दिल्ली, 1975, पृ. 256.
- 6 आर. डी. रानडे, ए कन्सट्रिक्टव सर्वे ऑफ इंडियन फिलासफी, बम्बई, 1968, पृ. 162.
- 7 भगवद् गीता, 4.6.

- 8 वही, 7.14.
- 9 एस. एन. दासगुप्ता, भारतीय दर्शन, भाग-1, पृ. 470
- 10 ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, 3.2.3.
- 11 ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, 1.4.3.
- 12 अनुवादक मुनिलाल, विवेक चूडामणि, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 26., श्लोक 110.
- 13 वही, पृ. 26, श्लोक 111.
- 14 पंचदशी, 5.141.
- 15 सतोहि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः। उत्तवते जायते यस्य जातं हि तस्य जायते। – माण्डूक्य कारिका, 3.2.7.
- 16 रामानुजभाष्य और गीता, 7.15.
- 17 रामानंद तिवारी शास्त्री, श्री शंकराचार्य का आचार दर्शन, 1964, पृ. 65.

